दैनिक जागरण
मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से महान बनता है

एक और तारीख

अयोध्या विवाद की सुनवाई एक बार फिर टलना इस मामले के पक्षकारों के साथ ही उन करोड़ों लोगों के लिए निराशाजनक है जो सदियों पुराने इस मसले के जल्द समाधान की प्रतीक्षा में हैं। इस बार सुनवाई इसलिए टली, क्योंकि सुन्नी वक्फ बोर्ड के वकील राजीव धवन ने पांच सदस्यीय पीठ में न्यायाधीश यूयू ललित के शामिल होने को लेकर यह रेखांकित किया कि एक वकील की हैसियत से वह तब कल्याण सिंह की पैरवी कर चुके हैं जब उन्हें अयोध्या ढांचा ढहने पर सुप्रीम कोर्ट की अवमानना का सामना करना पड़ा था। यह सही है कि राजीव धवन ने उन्हें पीठ से हटाने की मांग नहीं की, लेकिन उनकी ओर से 1994 के इस मामले का जिक्र जिस तरह किया गया वह कुल मिलाकर एक सवाल की ही शक्ल में उभरा। पता नहीं उनका मकसद क्या था, लेकिन जो प्रकट हो रहा है वह यही कि अयोध्या विवाद की सुनवाई को लंबा खींचने की कोशिश हो रही है। इसी कोशिश के तहत पहले यह दलील दी गई कि इस मामले की सुनवाई आम चुनाव के बाद होनी चाहिए। इसके बाद यह कहा गया कि पहले 1994 के उस मामले पर पुनर्विचार हो जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने यह व्यवस्था दी थी कि मस्जिद में नमाज पढ़ना इस्लाम का अभिन्न हिस्सा नहीं है। जब सुप्रीम कोर्ट ने इस पर विचार करने का फैसला किया तो यह मांग की गई कि इस मामले की सुनवाई बड़ी बेंच करे। यह मांग मंजूर नहीं हुई और सुप्रीम कोर्ट ने यह पाया कि मस्जिद में नमाज वाले मसले का अयोध्या मामले से कोई लेने-देना नहीं। इस नतीजे पर पहुंचने में समय लगा और जब अयोध्या मामले की सुनवाई की बारी आई तब तक तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति का समय करीब आ गया। उनकी सेवानिवृत्ति के बाद नए मुख्य न्यायाधीश की ओर से नई पीठ गठित करने की कवायद शुरू हुई। इस क्रम में पहले यह सूचना दी गई कि नई पीठ ही यह तय करेगी कि मामले की सुनवाई कब होगी। फिर यह कि नई पीठ पांच सदस्यीय होगी। इसी के साथ एक और तारीख मिली।

न्यायाधीश यूयू ललित की ओर से खुद को सुनवाई से अलग करने के बाद एक और तारीख मिली है। निःसंदेह यह एक तर्क है कि सब कुछ न्यायिक प्रक्रिया के तहत ही हो रहा है, लेकिन क्या इसकी अनदेखी कर दी जाए कि बीते नवंबर से तारीख पर तारीख का ही सिलसिला कायम है। कहना कठिन है कि 29 जनवरी को क्या होगा, लेकिन इतना तो है ही कि न्यायिक प्रक्रिया को केवल गतिशील होना ही नहीं चाहिए, बल्कि ऐसा दिखना भी चाहिए। बेहतर हो कि सुप्रीम कोर्ट यह समझे कि अयोध्या मामले की सुनवाई में देरी लोगों को अधीर कर रही है। इस अधीरता को आधारहीन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय को इस मसले पर फैसला सुनाए हुए नौ साल बीत चुके हैं। क्या इसकी कोई न्यायसंगत व्याख्या हो सकती है कि इस मामले को प्राथमिकता के आधार पर निपटाने का काम क्यों नहीं किया जा सका? कम से कम अब यह सुनिश्चित किया जाए कि इस मामले की सुनवाई में और देरी न हो।

आपदा प्रबंधन

विषम भूगोल वाले उत्तराखंड में प्राकृतिक आपदाओं से निबटने के लिए ग्राम स्तर तक खोज एवं बचाव दलों के गठन के साथ ही आपदा न्यूनीकरण के लिहाज से उठाए जा रहे कदमों को सरकार की सराहनीय पहल माना जा सकता है। सरकारी प्रयासों पर रोशनी डालें तो राज्य में अब मौसम के पूर्वानुमान की सटीक जानकारी के मकसद से गढ़वाल में सुरकंडा देवी और कुमाऊं में मुक्तेश्वर में इस वर्ष जून तक डॉप्लर रडार स्थापित किए जा रहे हैं। इसके साथ ही राज्यभर में 139 जगह वेदर स्टेशन समेत मौसम संबंधी उपकरण स्थापित किए गए हैं। आइआइटी रुड़की के सहयोग से 155 स्थानों पर भूकंप पूर्व चेतावनी तंत्र विकसित करने के मद्देनजर सेंसर लगाए गए हैं, जबकि सौ स्थानों पर सायरन लगाए जा रहे हैं। प्रदेश की 656 न्याय पंचायतों में 16 हजार से अधिक लोगों को आपदा से निबटने के मद्देनजर खोज एवं बचाव कार्यों के लिहाज से ट्रेंड किया गया है और ये पहल ग्राम स्तर पर शुरू की जा रही है। सभी जिलों में सेटेलाइट फोन दिए जा चुके हैं। इसके अलावा अन्य कई पहल भी सरकार की ओर से की जा रही हैं। निश्चित रूप से इन प्रयासों से आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबंधन में मदद मिलेगी। बावजूद इसके संशय के बादल भी कम नहीं है। अब तक के अनुभवों पर नजर दौड़ाएं तो आपदा न्यूनीकरण एवं प्रबंधन के लिए तमाम उपायों के बावजूद आपदा अथवा सड़क हादसों के बाद बचाव एवं राहत कार्यों के दौरान पूरा सिस्टम बेबस नजर आता रहा है। आलम ये है कि संचार क्रांति के इस दौर में कई बार आपदा अथवा हादसों की जानकारी घंटों बाद मिल पाती है। कई मर्तबा ये भी देखने में आया है कि बचाव एवं राहत कार्यों के लिए मौके पर पहुंचने वाली टीमों के पास एक अदद रस्सी तक नहीं होती। जाहिर है कि इन बिंदुओं पर अधिक गंभीरता से कार्य करने की जरूरत है। यह तभी होगा, जब आपदा से निबटने के लिए संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता और मॉनीटरिंग की पुख्ता व्यवस्था होगी। इस पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है, तभी मौसम और भूकंप के पूर्वानुमानों के मद्देनजर की जा रही कसरत का फायदा मिल पाएगा। यही नहीं, ग्राम स्तर पर स्वयंसेवियों के ऐसे दल तैयार करने होंगे, जो सरकारी मशीनरी के मौके पर पहुंचने से पहले ही तुरंत बचाव एवं राहत कार्यों में जुट जाएं।

असंवैधानिक नहीं है आर्थिक आरक्षण

प्रो. निरंजन कुमार

जहां नरसिंह राव सरकार 'कार्यालयी ज्ञापन' के माध्यम से आर्थिक आरक्षण लाई थी वहीं मोदी सरकार संविधान संशोधन के जरिये लाई है

अपनी मशहूर पुस्तक 'पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन' में बाबा साहब भीमराव आंबेडकर एक जगह लिखते हैं कि 'मैन लव प्रॉपर्टी मोर दैन लिबर्टी'। इस कथन का सरल अर्थ तो यह है कि मनुष्य मुक्ति से अधिक धन से प्रेम करता है, लेकिन इसका गूढ़ अर्थ यह है कि मुक्ति के मुकाबले लोगों में आर्थिक सुरक्षा की चाहत कहीं से भी कमतर नहीं है। आधुनिक काल में यह आर्थिक सुरक्षा और भी अधिक अहम हो जाती है, क्योंकि आर्थिक पराधीनता हर पराधीनता की जननी है। बाबासहब आंबेडकर के दर्शन के आलोक में मोदी सरकार द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के लिए सरकारी नौकरियों और शिक्षा संस्थानों में दस प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान का औचित्य सिद्ध होता है। हालांकि इस आर्थिक आरक्षण को लेकर देश में विवाद छिड़ गया है। कुछ इसे आरक्षण-जुमला कह रहे हैं तो कुछ संविधान-विरोधी बताते हुए इसके सर्वोच्च न्यायालय से खारिज हो जाने का अंदेशा जता रहे हैं। कुछ अन्य आरक्षण के आर्थिक आधार पर ही प्रश्न उठा रहे हैं तो कुछ इसे दलित-पिछड़ा विरोधी बताने में लगे हुए हैं। कई पार्टियां इसे चुनावी स्टंट मान रही हैं। हालांकि लोकसभा और राज्यसभा में अधिकांश दलों ने आर्थिक आरक्षण संबंधी विधेयक का समर्थन ही किया। सर्वप्रथम यह देखते हैं कि क्या संविधान में आर्थिक आधार पर आरक्षण का प्रावधान है? इसका उत्तर जानने के पहले यह जानना उपयुक्त होगा कि संविधान में आरक्षण का आधार क्या है? वर्तमान आरक्षण का आधार संविधान के अनुच्छेद 15(4) और अनुच्छेद 16(4) हैं। अनुच्छेद 16(4) के अनुसार राज्य नागरिकों के किसी पिछड़े वर्ग के लिए नियुक्तियों-पदों में आरक्षण के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। यहां दो बातें उल्लेखनीय हैं-पहली, अनुच्छेद 16(4) मूल संविधान में ही आरंभ से है। दूसरी, आरक्षण का यह प्रावधान पिछड़े वर्ग के लिए है। पिछड़ेपन का यह आधार सामाजिक हो सकता है, शैक्षणिक हो सकता है और आर्थिक भी हो सकता है।

विरोधियों द्वारा तर्क दिया जा रहा है कि संविधान के अनुच्छेद 15(4) में तो सिर्फ सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े तबकों के लिए ही आरक्षण का प्रावधान है, लेकिन यहां भी दो तथ्य जानने की जरूरत है-पहला, अनुच्छेद 15(4) मूल संविधान में आरंभ से नहीं है। इसे बाद में प्रथम संविधान संशोधन के रूप में 1951 में जोड़ा गया था, जब जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री और आंबेडकर कानून मंत्री थे। दूसरा, चंपकम बनाम मद्रास राज्य केस (1951) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को उलटने के लिए यह संविधान-संशोधन किया गया था। उपरोक्त विश्लेषण से भी कई निष्कर्ष निकलते हैं-पहला, आरक्षण किसी भी पिछड़े वर्ग के लिए हो सकता है, चाहे वह सामाजिक-शैक्षणिक दृष्टि से हो या आर्थिक रूप से। दूसरा, जिस तरह मूल संविधान में संशोधन कर अनुच्छेद 15(4) जोड़ते हुए सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े तबकों के लिए विशेष प्रावधान किया गया उसी तरह एक और संशोधन कर आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिए भी विशेष प्रावधान किया जा सकता है। तीसरा, केंद्र सरकार चाहे तो सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों को संविधान संशोधन के माध्यम से पलट सकती है। इस आलोक में आर्थिक रूप से पिछड़ों के लिए आरक्षण देने का निर्णय कहीं से भी असंवैधानिक नहीं है।

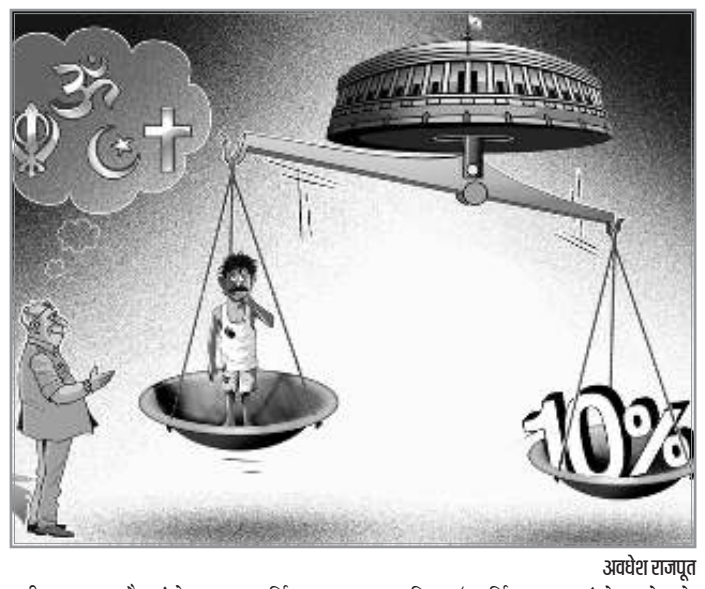

अवधेश राजपूत

यह आरोप भी गलत है कि 'आर्थिक आरक्षण' दलित-पिछड़े तबकों के हितों पर कुठाराघात है। जबकि सरकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि प्रस्तावित दस प्रतिशत आरक्षण दलित-पिछड़ों के मौजूदा 49.5 प्रतिशत आरक्षण के इतर होगा। अर्थात इन तबकों के आरक्षण कोटा पर कोई आंच नहीं आएगी। कुछ लोगों के लिए प्रस्तावित आरक्षण एक जुमलाबाजी और 2019 का चुनावी लॉलीपॉप भर है। इनके अनुसार पहले भी आर्थिक आधार पर आरक्षण दिया गया, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया। ये लोग पीवी नरसिंह राव सरकार द्वारा दिए गए दस प्रतिशत 'आर्थिक आरक्षण' के आदेश के खारिज होने का हवाला दे रहे हैं, लेकिन हमेशा अर्द्ध-सत्य बोलने वाले ये बुद्धिजीवी यह नहीं बताते कि पीवी नरसिंह राव सरकार द्वारा उक्त आरक्षण एक 'कार्यालयी ज्ञापन' के माध्यम से लाया गया था, किसी संविधान संशोधन द्वारा नहीं। तब सुप्रीम कोर्ट ने संविधान में आर्थिक आधार के न होने पर इसे अमान्य कर दिया था, लेकिन मोदी सरकार संविधान में संशोधन करके आर्थिक आधार का प्रावधान करते हुए यह आरक्षण ला रही है ताकि कोर्ट में भी यह न्यायिक समीक्षा का सामना कर सके। यहां यह ध्यान रहे कि 2008 में केरल की कम्युनिस्ट सरकार द्वारा जब उच्च शिक्षा संस्थानों में दस प्रतिशत का 'आर्थिक आरक्षण' दिया गया तो उसे चुनौती दी गई, लेकिन केरल उच्च न्यायालय ने इस आरक्षण को सही ठहराया। अब सुप्रीम कोर्ट में इस पर अपील लंबित है। स्पष्ट है कि यह कहना ठीक नहीं कि वर्तमान कवायद महज हवाबाजी या जुमलाबाजी भर है। आर्थिक आरक्षण पर एक अन्य हवाला यह दिया जा रहा है कि इंदिरा साहनी केस (1992) में आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत की गई है। यह पूरी तरह सही नहीं है। सरकार के अनुसार सुप्रीम कोर्ट ने यह सीमा-रेखा एससी, एसटी और अन्य पिछड़ा वर्गों के कुल आरक्षण के लिए खींची थी। इस फैसले में कोर्ट ने यह भी कहा था कि इस विविधता भरे देश में विशिष्ट परिस्थितियों में 50 प्रतिशत की इस सीलिंग से छूट ली जा सकती है। अर्थात सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों को मुख्यधारा में लाने में 50 प्रतिशत की हद-बंदी लागू नहीं होती है।

कई लोगों की ओर से यह भी कहा जा रहा है कि आर्थिक आरक्षण आम चुनाव के पहले की गई एक राजनीतिक 'सर्जिकल स्ट्राइक' है, लेकिन यह समझने की जरूरत है कि हरेक दल अपनी नीतियां बनाने या फैसले लेते वक्त यह जरूर विचार करता है कि इससे उसे क्या राजनीतिक या चुनावी नफा-नुकसान हो सकता है। यह बात सभी पार्टियों पर लागू होती है और भाजपा भी अपवाद नहीं है। संविधान-कानून के दायरे में लिए गए किसी निर्णय से मोदी सरकार चुनावों में लाभ उठाना चाहती है तो यह कोई नाजायज बात नहीं है। आर्थिक आरक्षण के संदर्भ में यह भी महत्वपूर्ण है कि यह सभी मजहब के आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को उपलब्ध होगा, वे चाहे हिंदू हों अथवा मुसलमान या ईसाई या अन्य समुदायों के लोग। इससे एक ओर इन समुदायों के कमजोर तबकों को मुख्यधारा में लाने में मदद मिलेगी तो दूसरी ओर सभी पंथों के बीच सामाजिक समरसता का भाव पैदा होगा। इसका एक फायदा यह भी होगा कि सामान्य या अनारक्षित वर्ग के अनेक लोगों में अब तक आरक्षण पा रहे तबकों के प्रति जो असंतोष, ईर्ष्या और आक्रोश का भाव है वह कम होगा।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

खत्म होता आरक्षण का उद्देश्य

शंकर शरण

आरक्षण का इतिहास दिखाता है कि अपवाद मानकर शुरू की गई चीज नियम को ही बर्बाद कर चुकी है

दस प्रतिशत आर्थिक आरक्षण की घोषणा पर विविध दलों के नेताओं के बयानों से साफ झलकता है कि अब आरक्षण के उद्देश्य पर कोई राष्ट्रीय सहमति नहीं रह गई है। हरेक नेता, पार्टी और समूह अपनी-अपनी तरह से उसका अर्थ करने लगे हैं। सत्तर साल पहले जब आरक्षण का प्रावधान अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए किया गया था तब न केवल आरक्षण का उद्देश्य स्पष्ट था, बल्कि उसकी अवधि भी। डॉ. आंबेडकर ने अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिए की थी। किसी को स्थाई रूप से विशेषाधिकार देना और देश के प्रतिभावानों के बीच भेदभाव करना उन का आशय नहीं था। तब किसी भी समूह को स्थाई रूप से आरक्षण देने की बात किसी के सपने में भी नहीं थी, लेकिन सात दशक बीत जाने के बाद न केवल आरक्षण जारी है, बल्कि नए-नए समूहों और रूपों में बढ़ता जा रहा है। अब तक के आरक्षण के परिणामों का कोई विधिवत अध्ययन, सर्वेक्षण आज तक किसी स्तर पर नहीं किया गया। क्या इसी से स्पष्ट नहीं कि आरक्षण के मूल उद्देश्य भुलाए जा चुके हैं? इस पर हमारे नेताओं को कभी राष्ट्रीय हित में विचार करना चाहिए। वे बखूबी जानते हैं कि अब आरक्षण एक ऐसी नीति बन गया है जिसके लक्ष्य पाए ही नहीं जा सकते। एक बड़े नेता तो 'कला और संस्कृति' में भी आरक्षण की चाह व्यक्त कर चुके हैं। कौन जाने, आगे खेल-कूद में भी आरक्षण की मांग होने लगे। कल्पना करें कि तब कैसे खिलाड़ी, संगीतकार और अभिनेता आदि बनेंगे? वस्तुतः अभी वही अनेक प्रशासनिक, शैक्षिक स्थानों का हो रहा है। यह दिखाई नहीं देता तो इसलिए क्योंकि राजनीतिक वर्ग ने वास्तविक काम और गुणवत्ता की चिंता ही छोड़ दी है। उसका सारा ध्यान और चिंता केवल दलीय प्रतिस्पर्द्धा और सत्ता-दखल पर रहता है। नए-नए आरक्षणों की मांग और प्रस्ताव उसी के लिए होते हैं। इस सच्चाई से नजर चुराना देश की हानि करना है।

निःसंदेह किसी भी तरह का आरक्षण किसी अन्य को वंचित करता है। न तो सामान्य बुद्धि और न ही कोई न्याय-दर्शन कहता है कि किसी को इसलिए वंचित करें, क्योंकि 'सदियों पहले' उनके पूर्वजों ने दूसरों को 'वंचित किया होगा।' यह भी ध्यान रहे कि इस मान्यता का परीक्षण नहीं किया जाता। आज आरक्षण राजनीतिक कुश्ती का हथियार बन चुका है। तमिलनाडु इसका साफ उदाहरण है, लेकिन अब तो केंद्र में भी वही हाल है। इसीलिए जब कभी न्यायपालिका ने आरक्षण को कुछ सुधारने का निर्णय किया तो संविधान संशोधन करके उसे पलट दिया गया। अब तक कम से कम सात बार ऐसे संशोधन हो चुके हैं, लेकिन

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता की गारंटी करने के लिए कोई विधेयक एक बार भी नहीं आया। न ही सभी भारतीयों को अपनी-अपनी भाषा में भी बड़े अंग्रेजी स्कूलों की तरह अच्छे शिक्षण-प्रशिक्षण मिलने के लिए कुछ सोचा गया। इसी से स्पष्ट है कि सबके लिए 'समान अवसर' बनाना या 'भेदभाव खत्म करना' नेताओं की चिंता ही नहीं रहा।

आरक्षण ने एक जड़ मानसिकता बनाई है, जो नया चिंतन पनपने नहीं देती। फलतः जैसे ही कोई आरक्षण की आलोचना करता है उसे तरह-तरह के लांछनों से बेध दिया जाता है। जो भी जाति-मजहब भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय, सामाजिक विमर्श और नीति-निर्माण की बात करता है उसे जातिवादी और सांप्रदायवादी बता दिया जाता है। यह सोवियत कम्युनिस्ट शैली की बंद, प्रचारात्मक मानसिकता है जो यहां प्रभावशाली बन गई है।

विचित्र यह है कि जिन सामाजिक समूहों का विचार-तंत्र जाति जैसी चीज मानता भी नहीं जैसे ईसाइयत और इस्लाम उन्हें भी जातिगत आरक्षण का लाभ मिल रहा है। अल्पसंख्यक आयोग के पूर्व अध्यक्ष तरलोचन सिंह के अनुसार मुसलमानों में 58 जातियों और 14 जनजातियों को आरक्षण का लाभ दिया जा रहा है। आखिर यह कौन सा तुक है कि एक ओर हिंदू धर्म-समाज को 'जाति' के लिए लांछित किया जाए और दूसरी ओर 'जाति मुक्त' समूहों को भी जातिगत आरक्षण दिया जाए? निःसंदेह यह दुर्भाग्यपूर्ण परिणति आंबेडकर की कल्पना नहीं थी। भारत में राजकीय तंत्र की भूमिका और आकार तो बेहद बढ़ते गए, किंतु पदधारियों की योग्यता की कोई परवाह न रही। यदि महत्वपूर्ण स्थानों पर आधे लोग योग्यता के बजाय अन्य कारणों से नियुक्त हो रहे हैं तो यह संपूर्ण राज्यतंत्र को बेबस करेगा ही। आरक्षण का इतिहास दिखाता है कि अपवाद मानकर शुरू की गई चीज नियम को ही बर्बाद कर चुकी है। अब सारे आरक्षण को समय-बद्ध रूप से समाप्त करके दुर्बलों की सहायता के वैकल्पिक उपाय करना जरूरी है। ताकि दुर्बल भी योग्य बनें। न कि योग्यता का ही स्तर गिराकर पूरे समाज की हानि की जाती रहे। दुर्बल समूहों को योग्य बनाने के लिए सुविधाएं देनी चाहिए। कोई कुपोषण ग्रस्त है तो उसे विशेष भोजन दें। शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था नहीं, तो उसे अध्ययन या प्रशिक्षण के लिए रियायती या मुफ्त स्थान दें। शुल्क माफ कर दें। यदि कोई परिवार बच्चों के श्रम के बिना जीविकोपार्जन करने में कठिनाई महसूस करें तो उसे आर्थिक सहायता दें जिससे वे बच्चों को शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए मुक्त करें। ताकि जब काम, परीक्षण, प्रतियोगिता का समय आए तो सभी स्थानों पर केवल योग्य ही लिए जाएं। वही सकारात्मक कार्रवाई होगी। तभी हम विश्वस्तरीय बनेंगे।

आज यह कोई नहीं कहेगा कि आरक्षण की सुविधा दी गई जातियों की स्थिति 1947 की तुलना में अब बदतर हो गई है। उस समय अनुसूचित जाति-जनजाति समुदाय के लोग बड़े पदों पर शायद ही दिखते थे, लेकिन आज जब सभी सत्ता निकायों, संसद, विधानसभाओं, सर्वोच्च पदों और राष्ट्रीय, राजकीय संस्थानों में उनकी उपस्थिति नियमित बन चुकी है तब भी विशेष अधिकारों का जारी रहना सब के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। ऐसी स्थिति में और भी नए-नए आरक्षण घातक ही सिद्ध होंगे। हमारे सभी नेताओं को पुराने आरक्षणों को भी अंतिम समय सीमा में बांधने पर विचार करना चाहिए। देश की तमाम प्रतिभाओं को सामने लाने का उपाय सोचना चाहिए, न कि उन्हें कुंठित करते रहना। उन्हें ध्यान देना चाहिए कि भारत के युवा चाहे वे किसी भी जाति-समुदाय से हों, बाहर देशों में जाकर तरह-तरह की सफलता प्राप्त करते हैं। अमेरिका, यूरोप या अरब देशों में उन्हें कोई आरक्षण नहीं मिला, फिर भी वे अपनी जगह बना लेते हैं। तब यहीं भारत में ही उन्हें तरह-तरह से वंचित, प्रतिबंधित करना अंततः देश की हानि है। इससे कुल मिलाकर सब को हानि होती है।

(लेखक राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर एवं स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

भय पर विजय

महाभारत के एक प्रसंग में यक्ष ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न पूछा कि इस दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने अपने उत्तर में कहा था कि इस दुनिया में मनुष्य रोज दिन जीवों को यमलोक प्रस्थान करते हुए देखता है, किंतु जो जीवित हैं, उनको यही लगता है कि कदाचित उनकी मृत्यु नहीं होगी तथा मृत्यु के बारे में यही अज्ञानता इस दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य है। आखिर एक महती प्रश्न यह उठता है कि यदि मानव मरणशील है तथा जीवन का पटाक्षेप मृत्यु के अंतिम कड़ी के साथ होना तय है तो फिर मृत्यु से हम डरते ही क्यों हैं? मृत्यु के स्याह साया का भय ताउम्र हमारी चिंता एवं चिंतन का कारण क्यों बन जाता है? और यदि मृत्यु से डर भी मानव जीवन के स्वाभाविक गुणों में आता है तो फिर यह प्रश्न कम महत्वपूर्ण नहीं है कि आखिर इस भय से मुक्ति का रास्ता क्या है? काल के गाल में जिस तरीके से सनातन से सृष्टि समाती जा रही है, आखिर उससे निवारण का रास्ता क्या है?

सच पूछिए तो मृत्यु का दर्शन एवं मनोविज्ञान अत्यंत रहस्यमय एवं छायावादी है। हमारे सभी वेदों तथा पुराणों में कहा गया है कि यह नश्वर संसार एक कागज की पुड़िया की तरह है, जिसे अंततः गल जाना है, नष्ट हो जाना है। संसार को माया के नाम से भी जाना जाता है। आर्यावर्त सरीखे पावन पुण्य वसुंधरा पर अवतरित होने वाले अनगिनत देवी-देवता भी इन मानव-सुलभ गुणों एवं अवगुणों से महफूज नहीं रह पाए, बल्कि पूरी महाभारत की लड़ाई इसी आपसी स्वार्थ एवं लिप्सा की गाथा रही है। और सच पूछें तो मृत्यु का भय इसी परिवार, माया-मोह, आशा-तृष्णा, अपने तथा पराये एवं संसार के अन्य रिश्तों-नातों की असुरक्षा के भय तथा उनके बिछुड़ जाने से जनित दुख का परिणाम होता है।

कुल मिलाकर निरंतर चिंतन एवं मनन की राह पर चलकर जीवन की प्रियाप्रिय घटनाओं को जब हम आध्यात्मिकता से जोड़कर देखेंगे और प्रकृति की नियति के रूप में आत्म-मीमांसा करेंगे तो मृत्यु का भय हमारे अंदर से बिल्कुल खत्म तो नहीं होगा, किंतु रफ्ता-रफ्ता उस कड़वे सच को आत्मसात करने की शक्ति हमें जरूर हासिल हो जाएगी।

श्रीप्रकाश शर्मा

समस्या बनते बेसहारा मवेशी

देवेंद्रराज सुथार

आंकड़े बताते हैं कि भारत में होने वाले सड़क हादसों की एक बड़ी वजह बेसहारा मवेशी भी बन रहे हैं

देश में बेसहारा मवेशियों की समस्या दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। जहां एक ओर ऐसे मवेशी सड़क हादसे का सबब बनते जा रहे हैं तो दूसरी ओर खेतों की फसलों को भी चौपट कर रहे हैं। आज कमोबेश शहर हो या गांव, कोई भी इन मवेशियों से बचा हुआ नहीं है। आंकड़े बताते हैं कि भारत में होने वाले सड़क हादसों में मौतों की बड़ी वजह बेसहारा मवेशी बन रहे हैं, जो यातायात व्यवस्था को बाधित करने के साथ ही अचानक सड़क के बीच आकर चलते हुए वाहनों को गिराने का काम करते हैं। वहीं खेतों में किसानों द्वारा रात-दिन पहरेदारी करने के बाद भी ये मवेशी एक ही बार में फसलों को चटकर उनकी सारी मेहनत पर पानी फेर देते हैं।

बात सिर्फ फसल को नष्ट करने तक सीमित नहीं है, बल्कि इन मवेशियों के आतंक से देश के पर्यटन उद्योग पर भी विपरीत असर पड़ रहा है। हाल ही में जर्मनी से भारत घूमने आई एक महिला पर्यटक को बेसहारा मवेशियों ने बुरी तरह से घायल कर दिया। यही नहीं कुछ समय पहले जयपुर में अर्जेंटीना के एक विदेशी पर्यटक को एक मवेशी ने इतनी बुरी तरह से मारा कि उसकी मौके पर ही मौत हो गई। ये तो केवल उदाहरण मात्र हैं बाकी आज देश के प्रत्येक शहर से इन बेसहारा मवेशियों के आतंक के नित नए किस्से सामने आ रहे हैं। निश्चित ही इससे देश में घूमने आने वाले विदेशी सैलानियों में भय का माहौल पैदा हो रहा है। ये मवेशी गलियों और सड़कों के किनारे पड़े कूड़ा-करकट और पॉलिथीन की थैलियों को निगल कर अपनी जान से भी हाथ धो रहे हैं। ये मरने के बाद भी आमजन को परेशान करना बंद नहीं करते हैं। कई दिनों तक उनकी लाश सड़ती रहती है और भयानक बदबू नाक में दम करके रख देती है।

सवाल है कि आखिर सड़कों पर क्यों घूमते हैं मवेशी? साथ ही इनसे होने वाले नुकसान के लिए जिम्मेदार कौन है? दरअसल देशभर में घूम रहे इन मवेशियों की कुल संख्या पांच लाख से भी अधिक है। इनमें अधिकतर लावारिस गोवंश हैं। दरअसल देश में लावारिस गोवंश की संख्या के अनुपात में गोशालाओं की पर्याप्त संख्या का नहीं होना एक अलग समस्या है। दूसरा कारण यह है कि कुछ गोपालक गायों का दूध निकालने के बाद उन्हें ऐसे ही घूमने के लिए खुला छोड़ देते हैं। इसके अलावा हमारे गाय प्रेमी देश में भले ही आज गाय के नाम पर लोगों की जान ली जा रही हो और गाय को राष्ट्रीय पशु बनाने की पुरजोर मांग की जा रही हो, लेकिन हकीकत यह है कि देश में गायों की मुख्य समस्याओं को हल करने के प्रति कोई गंभीर नहीं है।

एक ओर देश विश्व की छठी बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है, लेकिन दूसरी ओर आज भी हम अपने देश को बेसहारा मवेशियों की समस्या से मुक्त नहीं कर पाए हैं। इसके लिए गोशालाओं की संख्या में वृद्धि कर बेसहारा मवेशियों पर नकेल कसनी होगी। बेसहारा मवेशियों के नियमन और निषेधन को लेकर स्थानीय प्रशासन को अपनी जिम्मेदारी तय करनी होगी और अपने क्षेत्र में घूमने वाले मवेशियों के मालिकों का पता लगाकर उन्हें दंडित करना होगा ताकि दोबारा वे अपने पशुओं को खुला न छोड़ें।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

सराहनीय कदम

मोदी का राजनीति रामबाण शीर्षक से लिखे अपने आलेख में प्रदीप सिंह ने सच कहा है कि वास्तविकता में मोदी सरकार सबका साथ सबका विकास की अवधारणा को आगे रखकर ही देश को निरंतर दिशा दे रही है। सामान्य वर्ग के गरीबों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने के इस फैसले से सरकार का भला हो न हो, लेकिन सवर्णों का भला होने की पूरी संभावना है। कौन नहीं जानता कि आज सामान्य वर्ग का युवा सरकारी नौकरी पाने की आस में हरदम निराश ही नजर आता है। एक सरकारी पद पाने की लालसा में अपनी पूरी ताकत (शारीरिक और मानसिक) झोंक देता है, लेकिन अपने आरक्षित वर्ग के सहभागियों से अधिक अंक पाने के बावजूद भी प्रतिस्पर्धा से बाहर हो जाने पर सबसे पहले संविधान में वर्णित आरक्षण व्यवस्था को ही कोसता है। सामान्य वर्ग का एक बड़ा तबका गरीबी की छत के नीचे गुजारा करने को मजबूर है। देर आए, लेकिन दुरुस्त आए मोदी सरकार ने सवर्णों के इस दर्द को समझा और उन्हें गरीबी के इस दलदल से निकालने के वास्ते आर्थिक आरक्षण के लिए 124वां संविधान संशोधन कराया। मोदी सरकार के इस कदम की मैं सराहना करता हूं और यही आशा करता हूं कि इसका लाभ सामान्य वर्ग के गरीबों को मिले। तभी सवर्णों का भला हो पाएगा। वैसे भी देश में बढ़ती आर्थिक विषमता को मिटाने में आरक्षण का आर्थिक आधार ही सार्थक सिद्ध होगा।

पिंटू सक्सेना, लखनऊ

सतर्कता जरूरी

भारत से लगी तिब्बत की सीमा पर चीन अपनी सेना को मजबूत बना रहा है। वह सीमा पर तैनात सेना की युद्धक क्षमता को नए-नए तरह के हथियारों से सुसज्जित कर रहा है। इस तरह की कार्रवाई उसकी गलत नीयत का संकेत दे रही हैं। ऐसे में भारत को चीन से सतर्क रहने की जरूरत है।

विविधा, दिल्ली

सबके हित में मंदिर

बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि विवाद बहुत पुराना हो गया है। यह दुनिया में सबसे अधिक धैर्य की मिसाल है। भारतीय पुरातात्विक विभाग ने भी राम मंदिर के साक्ष्य को स्वीकार किया है। अब सभी पक्षों को आपसी सहमति से भव्य श्रीराम मंदिर का निर्माण करना चाहिए। यही सबके हित में है।

सौरभ त्यागी, दिल्ली

रोजगार के अवसर भी बढ़े

गरीब सवर्णों को आरक्षण देना मोदी सरकार का प्रशंसनीय कदम है। सवर्ण वर्ग के जो युवा प्रतियोगिताओं में पीछे रह जाते थे अब उन्हें भी अवसर मिल सकेगा। इससे सबका विकास होना सुनिश्चित होगा। अब जरूरत है कि सरकार रोजगार के अवसरों में वृद्धि करके युवा पीढ़ी के भविष्य को सुनहरा बनाए।

नेहा कुमारी, दिल्ली विवि

कहां से आएगा पैसा

मध्य प्रदेश में किसानों की कर्जमाफी के लिए बड़ी रकम की आवश्यकता है, जबकि राज्य सरकार के पास बजट कम है। अब इतने पैसे में सरकार किस प्रकार से कर्जमाफ करेगी? पार्टियां क्षणिक लाभ के लिए कर्जमाफी की घोषणा कर देती हैं, लेकिन वे यह नहीं सोचतीं कि इसके लिए पैसा कहां से आएगा। किसानों की कर्ज माफी देश की अर्थव्यवस्था के लिए सही नहीं है।

नीरज कुमार पाठक, नोएडा

कोई नहीं तो नोटा

आजादी के बाद देश ने विभिन्न क्षेत्रों में शानदार उपलब्धियां हासिल की है। इसका श्रेय किसी एक राजनीतिक पार्टी को नहीं दिया जा सकता। हर राजनीतिक पार्टी ने सत्ता में आकर देश के विकास के लिए थोड़ा-बहुत काम जरूर किया है। हालांकि अभी भी देश में बहुत सी समस्याएं हैं, उनका समाधान नहीं हो पा रहा है। गरीबी हटाने की बात सभी सरकारें करती हैं, लेकिन वह ज्यों की त्यों बनी हुई है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, लेकिन कुछ स्वार्थी लोगों के राजनीति में आने के कारण आमजन का विश्वास राजनीति से उठता जा रहा है। चुनाव आयोग ने वोटिंग मशीन में नोटा का विकल्प देकर आम जनता को दागी और आम जनता की